अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 51 अंक : 2 माघ-फाल्गुन वि.सं. 2080 फरवरी, 2024 सहयोग राशि- अठारह रुपये पृष्ठ-28 **RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x**

प्रेम गुप्ता की सेवानिवृत्ति पर आत्मीय समारोह

लंबे अरसे तक राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति से जुड़ी रही श्रीमती प्रेम गुप्ता के सेवानिवृत्त होने पर उन्हें एक अत्यंत गरिमामय समारोह में विदाई दी गई।

समिति की विभिन्न परियोजनाओं के संचालन में उत्साह के साथ जिम्मेदारी निभाने वाली सभी की 'प्रेम दीदी' की ऊर्जा को इस अवसर पर सभी ने याद किया। वे समिति के मुखपत्र 'अनौपचारिका' की कार्यकारी संपादक भी थीं।

समिति की अध्यक्ष श्रीमती आशा बोथरा, जो वर्धा में होने के कारण समारोह में शामिल, न हो सकी, ने व्यक्तिगत रूप से प्रेमजी को फोन पर उनके सुखी और स्वस्थ भविष्य की कामना की।

इस अवसर पर समिति के पूर्व अध्यक्ष राजेन्द्र भाणावत ने उन्हें पुष्प गुच्छ और सम्मान पत्र भेंट किया जबकि समिति की संयुक्त सचिव श्रीमती नीलम गुप्ता ने उन्हें समिति की तरफ से उपहार स्वरूप साड़ी भेंट की। समिति के सहकर्मियों ने जयपुर के आराध्यदेव गोविंद देव जी का सुंदर चित्र भेंट किया। इस अवसर पर प्रेम जी के पति श्री हेमराज गुप्ता तथा उनके परिवार के सदस्य मौजूद थे।

इस वर्ष 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस पर समिति प्रांगण में प्रेमजी ने ही झंडारोहण किया। ❑

दादू कुल हमारे केसवा, सगात सिरजनहार।
जाति हमारी जगतगुर, परमेश्वर परिवार।।
दादू एक सगा संसार मैं, जिन हम सिरजे सोइ।।
मनसा बाचा क्रमनां, और न दूजा कोई।।

– दादू दयाल ग्रंथावली

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 51 अंक : 2 माघ-फाल्गुन वि.सं. 2080 फरवरी, 2024

क्र म

पुस्तकों का बसंत

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

संरक्षक :
श्रीमती आशा बोथरा
संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

हम कितना जानते हैं और हमारे पास कितना ज्ञान है !

कुछ जुमले हम इन दिनों बहुत सुनते हैं जैसे नॉलेज इज़ पॉवर – ज्ञान ही ताकत है। ज्ञान अर्थात जानना। इसलिए गंभीरता से यह जानना चाहिए कि हम कितना जानते हैं? तभी हम जान पाएंगे कि हमारे पास कितनी ताकत है। जितना जानेंगे उतनी ही तो ताकत होगी। इसीलिए यह प्रश्न कोई कम महत्व का नहीं है कि हम कितना जानते हैं या हमारे पास कितना ज्ञान है?

जानने की इस खोज के रास्ते पर निकलने पर सबसे पहला सवाल तो यही खड़ा होता है कि वह ज्ञान क्या है जो हमें करते रहने तथा कुछ नया करने की ताकत देता है? क्या ज्ञान सिर्फ जानकारी का भंडार है? क्या जिसके पास जितनी अधिक जानकारी है वह उतना अधिक ज्ञानी माना जा सकता है? सीधे सीधे यह भी पूछा जा सकता है कि क्या जानकार होना और ज्ञानी होना एक समान है?

इकीसवीं सदी में आई नई डिजिटल यंत्र तकनीक ने जानकारी रखने के मामले में सबको बराबर कर दिया है। अब जानकारी के भंडार की कुंजी चाहे जिसे मिल सकती है। कोई यह नहीं कह सकता कि अमुक जानकारी सिर्फ मेरे पास है। अंतर्जाल पर सर्च इंजिन के जरिए कोई भी कैसी भी जानकारी, उसके सारे पहलुओं समेत, एक क्लिक के साथ पा सकता है। अब तो एआई अर्थात कृत्रिम बुद्धि ज्ञान के अथाह भंडार से निकाल कर आपकी जरूरत की सामग्री एक क्षण में दे देती है। तो क्या जिसके पास अंतर्जाल में खोजने की सुविधा है वह सबसे बड़ा ज्ञानी माना जा सकता है?

स्वाभाविक ही विद्वान लोग कहेंगे कि जानकार होना ज्ञानी होना नहीं हो सकता। विज्ञान भी हमें नई-नई जानकारियां देता है, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि विज्ञान की जानकारियां रखने वाले सभी लोग ज्ञानी मान लिये जाय।

ज्ञान और जानकारी का फ़र्क हम चेतना के स्तर पर कर सकते हैं। मगर फिर नया सवाल उठ खड़ा होता है कि चेतना क्या है, क्या उसके स्तर होते हैं, और क्या मानव चेतना का भी विकास हुआ है और भविष्य में उसके और विकसित होने की संभावनाएं हैं? क्या मन को चेतना मान लें?

हमें अनुभव आत्मा से होता है। तो क्या मन ही आत्मा है? क्योंकि स्वयं अपना अनुभव हम अपनी आत्मा से करते हैं, तो क्या आत्मा चेतना है? एक प्रकार से कह सकते हैं कि आत्मा ही चेतना है और चेतना ही आत्मा है। जो चेतन नहीं है वह जड़ है। जड़ है तो निर्जीव है। मगर यह भी कहा जाता है कि समस्त सृष्टि एक है? हजारों वर्ष पहले

वेदिक ऋषियों ने यह कैसे कह दिया कि समस्त चराचर जगत एक है? उन्होंने जो कहा उसे आधुनिक विज्ञान ने भौतिक प्रयोगों से सिद्ध भी कर दिखाया है। प्रत्येक पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई अणु में भी वैज्ञानिकों ने गतिमान और स्थिर अंश पाये। प्रत्येक अणु अपने अंदर एक सूक्ष्म ब्रह्मांड लिये मौजूद होता है। विज्ञान की नई खोजों के साथ आज हम क्वांटम भौतिकी तक पहुंच गये हैं।

वैज्ञानिक ऋषि परंपरा विस्मृत हो गई तो हम भारत के लोगों ने कभी भौतिक प्रयोगों से इसे जानने या सिद्ध करने का कोई प्रयास नहीं किया। मगर पश्चिम के लोगों ने आधुनिक भौतिक विज्ञान के जरिए इसे साबित कर दिया है। पदार्थ, अणु, परमाणु, नाभिक, सर्वदा गतिमान एलेक्ट्रोन – वे भी पॉजिटिव व निगेटिव – साथ में फोटोन। वैज्ञानिकों ने इन्हें जाना तो उन्हें ज्ञान हुआ कि अभी तो जानने की संभावनाएं अनंत हैं। इसलिए इस सवाल को यदि यूं पूछा जाय कि हम वास्तव में कितना जानते हैं, या जान सकते हैं तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। तो सवाल वहीं का वहीं रह जाता है कि ज्ञान क्या है? क्या ज्ञान एक तर्कसंगत समझ है या इंद्रियों का अनुभव जो हमें यथार्थ तथा प्रकृति को जानने की क्षमता देता है। जानना देखने से आता है। इसीलिए जानने की बात आती है तो प्रमाण की बात भी आती है।

ज्ञान क्या है, इसकी जांच नीचे से शुरू करना सबसे अच्छा तरीका हो सकता है। अवधारणात्मक ज्ञान की समझ की खोज, खास कर सामान्य जीवन और भाषा दोनों में जो ज्ञान के मुख्य प्रतिमान हैं, पहले करें। क्या यह इंद्रिय अनुभव है जिसने दर्शनशास्त्र को प्रमाण की धारणा दी? क्या यह खुद अपने अंदर इतना स्पष्ट है कि उसे प्रमाण की क्या आवश्यकता है? मगर कुछ व्याख्या की जा सकती है। जैसे ज्ञान की धारणा में पहली बात तो यह निहित है कि ज्ञान को आवश्यक रूप से सत्य होना चाहिए। साथ ही सत्यता में विश्वास तथा सत्यता के लिए पर्याप्त प्रमाण भी जरूरी है।

विद्वान बताते है कि एक प्रकार का ज्ञान वह है जो अनुभव के पश्चात् प्राप्त होता है। दूसरे प्रकार का वह है जो प्रयोग, निरीक्षण तथा अनुभव पर केन्द्रित होता है तथा तीसरे प्रकार का ज्ञान अनुभव से परे होता है। इस प्रकार के ज्ञान के सम्बन्ध में यह धारणा भी है कि अनुभव केवल तथ्य ही देता है परन्तु तथ्य किसी बात को सिद्ध नहीं करते। उनसे सत्य का ज्ञान उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि उनको संगठित न किया जाए। तर्क द्वारा वह संगठित किये जाते हैं। इस प्रकार तर्क या बुद्धि अनुभव को ज्ञान में परिवर्तित करते है।

ज्ञान में एक सीमा ऐसी भी आती है जब उसके आगे जो है वह अज्ञेय रह जाता है। महान लेखिका महादेवी वर्मा का कहना था कि नया जानना निरंतर रहता है। उसका कोई अंत नहीं होता। जो जो जान लिया जाता है वह विज्ञान हो जाता है तथा उसके बाद भी अज्ञेय रह गये की खोज जारी रहती है। ❑

लेख

राजनीति से किसी तरह का नैतिक बोध, जिम्मेदारी लुप्त हो चुके हैं

❑

❑
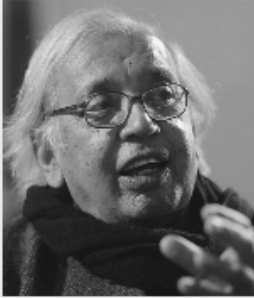
अशोक वाजपेयी

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और कवि हैं।

जब इस बार गांधी जी की पुण्यतिथि पर उनके होने के मर्म और तात्पर्य पर बोलने का न्योता सेवाग्राम से मिला तो मेरे लिए यह एक पुण्य उपलब्धि से कम नहीं लगा, न लग सकता था। वहां मैं पहले कई बार गया हूं पर बोलने नहीं उनकी वरद उपस्थिति चुपचाप महसूस करने। पर इस बार बोलना हुआ।

इस बार भारतीय समाज की स्थिति बहुत दुखद और हताश करने वाली है। यह समाज गांधी की दृष्टि, विवेक और अपेक्षा से जितनी अधिकतम दूरी संभव है उतनी दूर हो चुका है। शायद पूरा समाज नहीं, पर उसका एक बहुत बड़ा निर्णायक हिस्सा. हम आज अपने समाज में जितना अन्याय, हिंसा, अत्याचार देख रहे हैं, उतना शायद औपनिवेशिक सत्ता के कारनामों के समय नहीं रहा होगा या शायद अब लगभग उतना ही है। गांधी के सामने औपनिवेशिक सत्ता की हिंसा के साथ-साथ भारतीय समाज में जाति-धर्म-संप्रदाय आदि की हिंसा थी अर्थात् राज और समाज दोनों की हिंसा। ऐन इस समय हम फिर दोनों ही स्तरों पर हिंसा बढ़ती देख रहे हैं। गांधी के समय में यूरोप में चल रहे और होने वाले युद्धों की, नाज़ी और सोवियत हिंसा थी जैसी कि आज दुनिया के अनेक क्षेत्रों में है- रूस-यूक्रेन युद्ध, गाजा में हो रहे इज़रायल के आक्रमण, उसका हालिया सबूत हैं।

ऐसे भयावह रूप से हिंसक समय में गांधी ने संघर्ष और प्रतिरोध, मुक्ति और स्वतंत्रता के संग्राम के लिए एक नए क्रांतिकारी व्याकरण, अहिंसा का प्रस्ताव किया। अंग्रेज़ों के विरुद्ध हमारे अधिकांशतः अहिंसक स्वतंत्रता-संग्राम के रूप में दुनिया ने पहली बार अहिंसा को संग्राम की भाषा, उसका हथियार बनते, सघन-सार्थक-सफल होते देखा-पहचाना। यह अहिंसा बेहद संपन्न-उत्कट-समृद्ध अहिंसा थी: उसमें साहस, अंतःकरण, नैतिक बल, दूसरों का एहतराम, प्रेम-सद्भाव, समझ-सहानुभूति और संवेदना सब शामिल थे। यह अहिंसा बदलने में विश्वास करती थी, बदला लेने और नष्ट करने में नहीं, जोड़ने में, तोड़ने में नहीं- जय-पराजय की पदावली से उसका कोई सरोकार न था। उसका आग्रह राजनीति में नीति पर अधिक था, राज पर कम। उसकी व्याप्ति राज से बढ़कर

समाज में थी। उसकी अपेक्षा सारे कर्म की अहिंसा में थी।

हम सभी जानते हैं कि गांधी जी के जीवन, संघर्ष और दृष्टि से उभरने वाले कुछ अनिवार्य पक्ष रहे हैं। साध्य और साधन की एकता और पवित्रता, हर तरह की हिंसा का त्याग; उससे असहयोग और उसका प्रतिरोध; सत्याग्रह यानी सत्य की अडिकता; झूठ-अन्याय-अत्याचार की सविनय सकर्मक अवज्ञा; असत्य-अन्याय-अत्याचार से असहयोग; सत्ता का विकेंद्रीकरण और जड़ों की और उन पर लोकतांत्रिकता; आत्मशोध-आत्मपरिष्कार; अंत्योदय; सर्वधर्मसमभाव; आत्मोत्सर्ग और परदुखकातरता। उनके जीवन के अंतिम चरण में भारत स्वतंत्र हुआ, बंटवारा हुआ और बहुत खून-ख़राबा भी। वे अकेले पड़ते गए। पर उन्होंने सार्वजनिक जीवन से अपसरण नहीं किया। उनकी अंतिम प्रार्थना-सभाओं में से एक में, 29 जनवरी 1948 को, उन्होंने खुद दर्ज़ किया है- उसने कहा कि तुमने बहुत ख़राबी तो कर ली है, क्या और करते जाओगे? इससे बेहतर है कि जाओ, खड़े हैं, महात्मा हैं तो क्या, हमारा काम तो बिगाड़े ही हो. तुम हमको छोड़ दो, भूल जाओ, भागो। मैंने पूछा, कहां जाऊं? उसने कहा, तुम हिमालय जाओ मैं हिमालय क्यों नहीं जाता? वहां रहना तो मुझको पसंद पड़ेगा. ऐसा नहीं है कि मुझको वहां खाने-पीने-ओढ़ने को नहीं मिलेगा- वहां जाकर शांति मिलेगी, लेकिन मैं अशांति में से शांति चाहता हूं, नहीं तो उसी अशांति में मर जाना चाहता हूं। मेरा हिमालय यहीं है। आप सब हिमालय चलें तो मुझको भी लेते चलें। कुछ एक दिन बाद प्रार्थना-सभा में जाते हुए उनकी हत्या हुई। मुझे याद है कि उस समय मेरी उम शायद 8 साल की हुई थी। बापू की हत्या की ख़बर रेडियो पर जैसे ही आई, हमारे मोहल्ले में सब जगह शोक छा गया। उस रात किसी घर में चूल्हा नहीं जला: सिर्फ़ बच्चों के लिए हलवाई के यहां से बनवाकर खाना बांटा गया। बापू की मृत्यु हमारे छोटे-से शहर में जैसे कि हमारे परिवार में एक मृत्यु होने के बराबर थी। इसी मोहल्ले में तेरह दिनों बाद हर घर में तेरहवीं मनाई गई। रेडियो पर उनकी अंतिम यात्रा का आंखों देखा हाल सुनकर सैकड़ों लोगों को फफक-फफक कर रोते देखने की मुझे याद है।

आज जब उसी भारत में गांधी के हत्यारे का महिमा-मंडित होना, उस हत्या को दोहराने से कम नहीं है। विडंबना यह है कि पिछले एक दशक में गांधी को दरकिनार करने का एक सुनियोजित अभियान चलाए जाने के बावजूद, उनका मर्म और तात्पर्य और उनमें आस्था रखने वालों की उपस्थिति और सक्रियता मंद नहीं हो पाई है। एक हिंसक, अन्याय-अत्याचार ग्रस्त समाज को अहिंसक बनाने का गांधी-संघर्ष शिथिल नहीं पड़ा है और भले ही उसके सफल होने में और बहुत समय लगे पर जारी रहेगा। लहूलुहान होकर भी चलता रहेगा।

हमारी पौराणिक कल्पना में रसातल सबसे नीचे है पर कितना नीचे है इसका पता नहीं। देश की राजनीति में घटनाक्रम इतनी तेज़ी से बदलता रहता है कि लगता है कि वह नीचता के और तल पर नीचे उतर गया। रसातल अभी

इतना दूर नहीं है। याद नहीं आता कि राजनीति और सामाजिक जीवन में सामाजिक आचरण का स्तर इतनी तेज़ी से हर रोज़ नीच से नीचतर पहले हुआ हो। नीचता की इस दौड़ में मीडिया का एक बड़ा हिस्सा, अपनी सारी साधन-संपन्नता और सक्षमता के साथ, चीयरलीडर्स की तरह शामिल है और उसे प्रसन्न भाव से बढ़ावा और उकसावा देता रहता है।

सारे सिद्धांत और मूल्य दरकिनार कर राजनेता दल बदलते हैं; दलबदल कर पापमुक्त और धवल होकर राजपद पाते हैं और उनके विरुद्ध आर्थिक अपराधों के लिए की जा रही क़ानूनी कार्रवाई स्थगित या मंद पड़ जाती है और इस पर, सत्ता के ऐसे नियमित कदाचरण पर, न तो मीडिया सवाल उठाता है, न कोई अदालत उसे संज्ञान में लेती है और न उनकी लोकप्रियता में कोई कमी आती है। संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र के हर दिन दूषित-खंडित होने को हम नागरिक हाथ पर हाथ धरे देख रहे हैं। क्या हम इतने लाचार, निरुपाय और निहत्थे हैं कि कुछ नहीं करते, कर सकते? अगर यह सही है तो हम जल्दी ही अपनी सच्ची भारतीयता और सच्ची लोकतांत्रिक नागरिकता गंवाने की कगार पर होंगे। राजनेता हों न हों, हम रसातल में होंगे। ❑

महात्मा गांधी संभव है क्योंकि वे सही थे

❑

❑
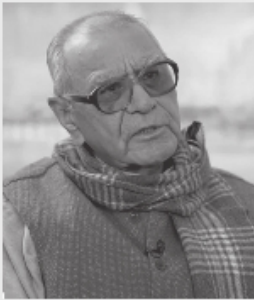
नन्द किशोर आचार्य

चिंतक–कवि नंदकिशोर आचार्य से हाल हीं में यूट्यूब के 'संगत' चैनल पर अंजुम शर्मा ने एक लंबी बातचीत की जिसमें गांधी, अहिंसा, कविता और उनकी जन्मस्थली बीकानेर के बारे में बड़ी दिलचस्प और गहरी चर्चा रही। उसी बातचीत का एक अंश जो गांधी और अहिंसा पर आधारित है, हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। ❑सं.

अहिंसा को समझने के लिए हमें हिंसा को समझना पड़ता है। हिंसा आप किसे कहेंगे? हिंसा का न होना ही तो अहिंसा हुआ न एक तरह से। हिंसा कई प्रकार की होती है। युद्ध तो बड़ी स्पष्ट और प्रत्यक्ष हिंसा है। लेकिन अप्रत्यक्ष हिंसा के कई रूप होते हैं जो आपकी सामाजिक संरचनाओं में, आपकी विचार प्रणाली में, आपके जीवन के व पारिवारिक पहलुओं में सभी जगह पर हमें दिखाई देते हैं। हिंसा सामाजिक संरचनाओं में, आर्थिक संरचनाओं में, राज्य व्यवस्थाओं में कई प्रकार से प्रतिबिंबित होती है। इसके साथ ही विचार प्रणाली में, जिसे कभी आप धर्म कहते हैं, कभी संप्रदाय कहते हैं, कभी जीवन मूल्य कहते हैं उनमें भी कई दफा हिंसा का औचित्य प्रतिपादित होता है। इस सभी आयामों में आप किस तरीके से हिंसा को कम कर सकते हैं या मिटा सकते हैं अथवा जितना ज्यादा संभव हो उतना कम कर सकते हैं, वही अहिंसा के रास्ते पर जाना है। सवाल इसका नहीं है कि अहिंसा संभव है कि नहीं है। सवाल यह है कि वह सही है कि नहीं। अगर सही है तो संभव है। अगर सही नहीं है तो संभव नहीं है।

सामान्य तौर पर हम संभव से सही को देखने की कोशिश करते हैं। मैं सही से संभव को समझने की कोशिश करता हूं। अगर सही है तो फिर वही करना चाहिए। जब मनुष्य को वही करना चाहिए तो फिर उसके लिए संभव है। मैं वही व्यवहार आपके साथ करूं जो आप मेरे साथ करें तो सही है कि गलत? मैं नहीं चाहता कि आप मुझ पर आक्रमण करें मैं नहीं चाहता कि मैं आपके हाथों मारा जाऊं। अगर मैं आपको मारना चाहता हूं, आपकी ज़मीन पर कब्ज़ा करना चाहता हूं, आपके साधनों पर कब्ज़ा करना चाहता हूं, लेकिन यह नहीं चाहता कि आप मेरे साधनों पर कब्ज़ा करें। इसका मतलब कि मैं सही नहीं कर रहा हूं। सही सबके लिए सही होता है। हम यह मानते हैं कि वह मेरे लिए इसलिए सही है क्योंकि वह मेरे स्वार्थ में है। आपके स्वार्थ में वह है या नहीं उसकी मुझे चिंता करने की जरूरत नहीं है।

महाभारत में नैतिकता के आचरण के लिए कहा गया है आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्, जो मेरे अनुकूल नहीं है वह दूसरे के लिए भी बिल्कुल नहीं है। आप जब कहते हैं कि 'सही' सब्जेक्टिव है वेदों में नैतिक आदर्श की बात है तो पशु बलि भी है तो

मैं कहता हूं नहीं ऐसा नहीं है। वेदिक काल में जो आदर्श उनका था उस आदर्श में उन्होंने कुछ कोताही बरती व्यवहार में, जो सभी संप्रदाय बरतते हैं। जब वह व्यावहारिक जीवन में आते हैं तब ठीक वैसा नहीं कर पाते हैं या नहीं करते। इतिहास में मनुष्य एक विकसनशील चेतना है। विकसित नहीं है। इसका तात्पर्य हुआ कि चेतना के विभिन्न आयाम विकसित होते रहते है, उनके अलग अलग स्तर विकसित होते रहते हैं। उस समय आदर्श क्या था। हम परंपरा को आदर्श के आधार पर समझते हैं, न कि व्यावहारिकता में क्या क्या गलतियां हो गई उसके आधार पर।

क्या गांधी का मूल्य संभव नहीं है? देखना यह पड़ेगा कि गांधी का जो मूल्य है वह उनका (उन पर सवाल उठाने वालों का) भी मूल्य है कि नहीं। क्या कोई व्यक्ति यह चाहता है कि दुनिया में शांति न रहे? युद्ध तो मूल्य नहीं हो सकता। वह एक तरीका हो सकता है किसी के लिए। वह अपने आप में मूल्य नहीं हो सकता। तो क्या कोई चाहता है कि दुनिया में शांति न रहे? क्या कोई चाहता है कि दुनिया में सभी लोगों को समान अधिकार न मिले, क्या कोई चाहता है कि दुनिया में शोषण समाप्त न हो? सभी चाहते हैं कि हो। गांधी और क्या चाहते हैं! जिसे हम ह्यूमन राइट्स कहते हैं आजकल, जिसे लेकर सारी दुनिया चिंतित रहती है और दुनिया के सभी देशों ने उसे स्वीकार किया है। जब यह यूएन असेंबली में पारित हुआ था उस समय कुछ देशों ने विरोध नहीं किया था केवल मतदान में हिस्सा नहीं लिया था। इसका मतलब कि जो विश्व चेतना है वह ह्यूमन राइट्स को स्वीकार करते हैं। ह्यूमन राइट्स और अहिंसा में क्या फ़र्क है? गांधी जिस अहिंसा की बात करते हैं, जिस आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की बात करते हैं उसमें और ह्यूमन राइट्स में जिस शोषण विहीन व्यवस्था की बात करते हैं सभी मनुष्यों को समान अधिकार देने की बात करते हैं उसमें फ़र्क क्या है? युद्ध से कहीं ज्यादा खतरनाक हिंसा आपके संरचनात्मक स्तरों पर है और उसके साथ ही आपके विचार प्रणाली में भी है। (इसे मैं) मनुष्य की चेतना के विकास का ही मैं एक लक्षण मानता हूं। ❑

नन्दकिशोर आचार्य से बात करते हुए अंजुम शर्मा

गांधी में डिसेप्टिव सिंपलिसिटी

(एक दौर ऐसा भी था) जब एक वर्ग गांधी को थोड़ा इररेशनल मानता था। (गांधी का) सम्मान करता था, मगर (उन्हें) इररेशनल मानता था। लेकिन धीमे-धीमे समझ में आया कि गांधी इररेशनल नहीं हैं। टाइम लगता है यह समझने में कि गांधी कितने रेसशनल हैं। जो भाषा वह बोलते हैं व बात करते है वह बड़ी उपदेशात्मक किस्म की लगती है लेकिन उसमें कितनी गहराई है, रीज़न कितना है, बाद में पता चलता है। 'हिन्द स्वराज' लिखी गई तब आप जानते हैं क्या-क्या बातें उसके बारे में कही गई। अंत तक कही जाती रही। आज लोग मानते हैं कि वह तो बड़ा अद्भुत ग्रंथ है - जब उसकी व्याख्या करने लगते हैं तब। इसलिए गांधी को समझना भी इतना आसान नहीं। एक डिसेप्टिव सिंपलिसिटी है गांधी में। लगता है यह तो साधारण सी बात है मगर वो है नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है वह गांधी का स्वराज्य है। आज़ादी गांधी का स्वराज्य नहीं है। वह तो उस तरफ बढ़ने का एक या पहला कदम है। ❑

पुरानी पड़ गई परीक्षा प्रणाली बदलने पर विचार जरूरी

❑

❑

प्रो. अशोक कुमार

लेखक इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर लाइफ साइंसेस के अध्यक्ष हैं। परीक्षा की जड़ हो गई प्रणाली को बदलने पर बहस छेड़ने की बात करता यह आलेख छात्रों के सीखे ज्ञान के निरंतर मूल्यांकन पर जोर देता है। सं

परीक्षाएं छात्रों की सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे ण् केवल विषय के ज्ञान और समझ का परीक्षण करती हैं बल्कि छात्रों को उनकी ताकत और कमजोरियों की पहचान करने में भी मदद करती हैं। किन्तु वर्तमान परीक्षा प्रणाली बहुत ही दोषपूर्ण है क्योंकि उसका उद्देश्य ज्ञानार्जन नहीं बल्कि प्रमाणपत्र प्राप्त करना रह गया है। वह मुख्य रूप से जीविका चलाने और नौकरी पाने का एक साधन हो गई है। वह सम्पूर्ण ज्ञान की परीक्षा नहीं होती क्योंकि उसमें स्मरण शक्ति पर एकमात्र बल दिया जाता है।

क्या छात्रों को अगली कक्षा या सेमेस्टर में प्रोमोट करने और उनके ज्ञान का आकलन करने के लिए परीक्षा आयोजित करना पवित्र है? क्या छात्रों को प्रोमोट करने के लिए अन्य प्रणाली या माध्यम से उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता?

परीक्षा के नाम पर न जाने कितने शैक्षणिक दिन बरबाद कर दिए जाते हैं। दोनों पक्षों की बहुत सारी ऊर्जा छात्रों द्वारा पेपर लिखने और शिक्षकों द्वारा उनकी जांच और मूल्यांकन करने में खर्च होती है जो या तो शिक्षकों द्वारा सिखाई गई एक ही चीज होती है या इंटरनेट से उठाई गई होती है। दोनों ही मामलों में छात्रों द्वारा दिए गये उत्तर उनके अपने नहीं, किसी और के होते हैं, तो शिक्षक किसका मूल्यांकन कर रहे हैं। परीक्षाओं का आधार क्या है? आज परीक्षाओं में नकल भी एक समस्या है। परीक्षा प्रणाली अब पुरानी और जर्जर हो चुकी है। कुछ नया होना चाहिये। सरकार और विश्वविद्यालयों द्वारा नये और समग्र तरीके अपनाने चाहिए।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली में कई खामियां हैं, जो छात्रों की शिक्षा और कौशल के वास्तविक मूल्यांकन में बाधा डालती है। परीक्षा प्रणाली के अत्यधिक औपचारिक हो जाने के परिणामस्वरूप विनाश हुआ है। प्रश्न पैटर्न, अवधि, और मूल्यांकन के मामले में एकरूपता का जुनून बीते दिनों के अवशेष हैं। सभी विषय अपनी प्रकृति में भिन्न होते हैं जिनके मूल्यांकन के लिये अलग-अलग मानदंडों की आवश्यकता होती है। लेकिन हमारा सिस्टम सभी के लिए एक ही आकार में विश्वास रखता है। यह हास्यास्पद है।

छात्रों की परीक्षा और उनका मूल्यांकन तो निरंतर बना रहना चाहिए

ताकि सीखने की उनकी प्रगति पर लगातार नज़र रखने में मदद मिल सके।

परीक्षा प्रणाली पर भरोसे की कमी का असर शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा के स्तर को बुरी तरह प्रभावित करता है। पढ़ना और पढ़ना इस प्रकार का होना चाहिए कि छात्र किसी भी परीक्षा के लिए हमेशा तैयार रह सके।

भारत में वर्तमान में एकल-मूल्यांकन परीक्षा प्रणाली है जो केवल छात्रों के रटने की क्षमता का परीक्षण करती है, उनकी वास्तविक सीखने और समझ को नहीं मापती। यह छात्रों पर बहुर अधिक दबाव डालती है। परीक्षाओं की तैयारी में उनका मानसिक तनाव बढ़ जाता है और वे चिंता में रहते हैं। यह छात्रों के बीच असमानता को भी बढ़ावा देती है। धनी और गरीब छात्रों के पास परीक्षाओं की तैयारी के लिए समान संसाधन नहीं होते।

परीक्षा प्रणाली पर भरोसे की कमी का असर शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा के स्तर को बुरी तरह प्रभावित करता है। पढ़ना और पढ़ना इस प्रकार का होना चाहिए कि छात्र किसी भी परीक्षा के लिए हमेशा तैयार रह सके।

परीक्षाओं को बहुआयामी बनाया जाना चाहिए और मल्टी मूल्यांकन प्रणाली अपनाई जानी चाहिए। छात्रों का मूल्यांकन केवल एक परीक्षा के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उनका कक्ष प्रदर्शन, परियोजना कार्य, शोध कार्य और अन्य गतिविधियों के आधार पर किया जाना चाहिए। छात्रों की मूल्यांकन प्रक्रिया को निष्पक्ष और पारदर्शी बनाया जाना चाहिए। छात्रों को मूल्यांकन प्रक्रिया को जानने का अधिकार होना चाहिए।

परीक्षा प्रणाली में नये जमाने की चुनौतियों और जरूरतों के अनुरूप बदलाव लाने और उसके प्रभावशीलता पर देशव्यापी बहस होनी चाहिए। ❑

बापू को स्वरांजली

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में महात्मा गांधी को उनकी पुण्यतिथि पर स्वरांजली के साथ याद किया गया जिसमें नई पीढ़ी के उभरते हुए शास्त्रीय संगीत के गायक हुल्लास पुरोहित ने अपने साथियों के साथ अत्यंत गरिमामय और आत्मीय सभा में संतों की वाणियां गा कर सबको विभोर कर दिया।

मीरा, दादू, सूरदास और नानक की वाणियों की अद्भुत प्रस्तुतियों में निर्भय होने, सत्य के साथ डट कर खड़े होने, निर्लिप्त रह कर सत्ता को चुनौती देने तथा सबको प्रेम के ताने बाने में पिरोए रखने की गांधीजी की सीख थी। कार्यक्रम की शुरुआत समिति की संयुक्त सचिव नीलम अग्रवाल की प्रस्तुति 'वैष्णव जन' गान के साथ हुई।

इस अवसर पर दशकों से लोक विरासत के संरक्षण में लगे जाजम फाउंडेशन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी भाई विनोद जोशी, समिति की पूर्व सचिव अंजू ढड्ढा मिश्र, पूर्व उपाध्यक्ष ऊषा बापना तथा पूर्व संयोजन सचिव दिनेश पुरोहित भी मौजूद थे। समिति के सहकर्मियों प्रेम गुप्ता तथा दिलीप शर्मा ने स्वरांजली में पधारे सुधिजनों का स्वागत किया। ❑

लेख

गांधी–गोडसे बराबर नहीं हो सकते

❑

शकील अख्तर

गांधी को छोटा दिखाना इतना बुरा नहीं था जितना उन्हें गोडसे के बराबर दिखाना। अभी तक दक्षिणपंथी गांधी वध कहकर उनकी हत्या को जस्टिफाई करते रहे। क्या कारण था पूछकर, कहकर हत्यारे के समर्थन का माहौल बनाते रहे। मगर यह पहली बार है कि गांधी गोडसे को बराबर खड़ा करके एक फिल्म बना दी गई है जिसका नाम ही है कि दोनों में युद्ध! और इसमें सबसे बुरा यह है कि इसे लिखा जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष ने।

यह अध्यक्ष हैं प्रसिद्ध हिन्दी लेखक असगर वजाहत। फिल्म का पूरा नाम है गांधी गोडसे : एक युद्ध! फिल्म का नाम ही अपने आप में स्पष्ट है कि इसकी थीम क्या है? विचार क्या है? अगर फिर भी कुछ भ्रम हो तो फैक्ट यह है कि फिल्म मध्य प्रदेश सरकार के वित्तीय सहयोग से बनाई गई है। उसी मध्य प्रदेश में जहां पिछले कई सालों से हर साल गांधी जी की पुण्य तिथि पर ग्वालियर में हिन्दू महासभा गांधी को गोली मारने के दृश्य की पुर्नप्रस्तुति करती है। गांधी के पुतला बनाकर बाकायदा फिर गोली मारी जाती है। और गोडसे की जय जयकार तो होती ही है।

गांधी के खिलाफ लिखने वाले बहुत हैं। यहां सवाल एक बड़े लेखक संगठन का है। जो अपने घोषणा पत्र में कहता है कि वह ऐसे लेखकों का संगठन है जो शांति का पक्षधर है। सांप्रदायिकता, अंध राष्ट्रवाद का विरोधी है। लेकिन इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि इसका अध्यक्ष ही हत्या के कारण खोज रहा है और जिस अंध राष्ट्रवाद सांप्रदायिक नफरत की वजह से गांधी को मारा गया था उसका विश्लेषण यह कहकर कर रहा है कि हत्यारे की मानसिकता को समझना जरूरी है। सांप्रदायिकता और अंध राष्ट्रवाद खुद कारण हैं। जो नफरत फैलाते हैं। जिससे हत्यारे की मानसिकता बनी थी। मगर उसे अलग से बताने की कोशिश वैसी ही है जैसे हमारे यहां अखबारों में औरत की हत्या के कारण बताए जाते हैं।

फिल्म को आए हुए एक महीने से ज्यादा का समय हो गया। देश की जनता को चाहे जितना नफरत का नशा कराया जाए मगर अभी भी उसमें इतना विवेक, गांधी प्रेम है कि वह गांधी गोडसे युद्ध का नाम सुनकर ही फिल्म देखने नहीं गई। फिल्म पिट गई। साहित्यिक क्षेत्रों में फिल्म की और सही बात तो यह है कि फिल्म की तो कम फिल्म के लेखक असगर वजाहत की ज्यादा आलोचना की गई। मगर आश्चर्य यह कि जनवादी लेखक संघ का कोई बयान देखने में नहीं आया। जबकि वह कहता है कि वह मार्क्स और आंबेडकर के विचारों पर चलने वाला वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जनता के विचारों को उपर उठाने वाला संगठन है। जनवादी लेखक संघ की चुप्पी आश्चर्यजनक और दुखद है।

जवाब तो सवालों के मिलने चाहिए मगर खुद लेखक यह कहकर सारे सवालों से बरी हो जाता है कि यह आभासी इतिहास है। गजब। गांधी के बारे में जिन्हें इतनी आलोचनाओं का सामना करना पड़ रहा है, गाली और घृणा का उन्हें काल्पनिक चरित्र कैसे बनाया जा सकता है? क्या और ज्यादा घृणास्पद अभियान चलाने के लिए?

असगर वजाहत ने अपनी सफाई दी है। उसमें वे कहते हैं कि गांधी भी मनुष्य थे और गोडसे भी मनुष्य थे। इसका क्या मतलब है? सिवा इसके कि दोनों को बराबर खड़ा करना। दूसरी बात वे कहते है कि दो हिन्दुत्व हैं। एक गांधी का एक गोडसे का! इसका मतलब और खतरनाक है। वैचारिक स्तर पर दोनों को एक धरातल पर खड़ा कर देने का।

लेखक में विचलन खास बात नहीं है। इन सालों में और भी लेखक जो खुद को प्रगतिशील, जनवादी कहते थे जन विरोधी हो गए। सरकारी संस्थानों में जगह ले ली। मगर किसी संगठन का यूं किंकर्तव्यविमुढ़ होना बहुत तकलीफदेह है।❑

लेखक का 'देशबन्धु' में छपा आलेख

क़ुदरत की बरकते हैं, ख़ज़ाना बसंत का

शायरों ने बसंत को उसके सौन्दर्यशास्त्र के साथ विभिन्न और विविध तरीक़ों से अपनी शायरी में प्रस्तुत किया है। उर्दू शायरी में बसंत का सूफ़ीवाद से भी गहरा नाता नज़र आता है। ऐसी शायरी में बसंत का एक दूसरा ही रूप नज़र आता है जो जीवन के विरोधाभासों का है।

लो फिर बसंत आई
फूलों पे रंग लाई

\- **हफ़ीज़ जालंधरी**

चलो बे-दरंग लब-ए-आब-ए-गंग
बजे जल-तरंग मन पर उमंग छाई
फूलों पे रंग लाई लो फिर बसंत आई
आफ़त गई ख़िज़ाँ की क़िस्मत फिरी जहाँ की
चले मय-गुसार सू-ए-लाला-ज़ार
म-ए-पर्दा-दार शीशे के दर से झाँकी
क़िस्मत फिरी जहाँ की आफ़त गई ख़िज़ाँ की
खेतों का हर चरिंदा बाग़ों का हर परिंदा
कोई गर्म-ख़ेज़ कोई नग़्मा-रेज़
सुबुक और तेज़ फिर हो गया है ज़िंदा
बाग़ों का हर परिंदा खेतों का हर चरिंदा
धरती के बेल-बूटे अंदाज़-ए-नौ से फूटे
हुआ बख़्त सब्ज़ मिला रख़्त सब्ज़
हैं दरख़्त सब्ज़ बन बन के सब्ज़ निकले
अनदाज़-ए-नौ से फूटे धरती के बेल-बूटे
फूली हुई है सरसों भूली हुई है सरसों
नहीं कुछ भी याद यूँही बा-मुराद
यूँही शाद शाद गोया रहेगी बरसों
भूली हुई है सरसों फूली हुई है सरसों
लड़कों की जंग देखो डोर और पतंग देखो
कोई मार खाए कोई खिलखिलाए
कोई मुँह चिढ़ाए तिफ़्ली के रंग देखो
डोर और पतंग देखो लड़कों की जंग देखो
है इश्क़ भी जुनूँ भी मस्ती भी जोश-ए-ख़ूँ भी
कहीं दिल में दर्द कहीं आह-ए-सर्द
कहीं रंग-ए-ज़र्द है यूँ भी और यूँ भी
मस्ती भी जोश-ए-ख़ूँ भी है इश्क़ भी जुनूँ भी
इक नाज़नीं ने पहने फूलों के ज़र्द गहने
है मगर उदास नहीं पी के पास
ग़म-ओ-रंज-ओ-यास दिल को पड़े हैं सहने
इक नाज़नीं ने पहने फूलों के ज़र्द गहने ❑

बसंत और होली की बहार

\- उफ़ुक़ लखनवी

साक़ी कुछ आज तुझ को ख़बर है बसंत की
हर सू बहार पैश-ए-नज़र है बसंत की
सरसों जो फूल उट्ठी है चश्म-ए-क़यास में
फूले-फले शामिल हैं बसंती लिबास में
पत्ते जो ज़र्द ज़र्द हैं सोने के पात हैं
सदबर्ग से तलाई किरन फूल मात हैं
हैं चूड़ियों की जोड़ बसंती कलाई में
बन के बहार आई है दस्त-ए-हिनाई में
मस्ती भरे दिलों की उमंगें न पूछिए
क्या मंतिक़ें हैं क्या हैं तरंगें न पूछिए
माथे पे हुस्न-ख़ेज़ है जल्वा गुलाल का
बिंदी से औज पर है सितारा जमाल का
गेंदों से माइल-ए-गुल-ए-बाज़ी हसीन हैं
सर के उभार पर से दुपट्टे महीन हैं
अक्स-ए-नक़ाब ज़ीनत-ए-रुख़्सार हो गया
ज़ेवर जो सीम का था तला-कार हो गया
सरसों के लहलहाते हैं खेत इस बहार में
नर्गिस के फूल फूल उठे लाला-ज़ार में
आवाज़ है पपीहों की मस्ती भरी हुई
तूती के बोल सुन के तबीअ'त हरी हुई
कोयल के जोड़े करते हैं चुहलें सुरूर से
आते हैं तान उड़ाते हुए दूर दूर से
बौर आम के हैं यूँ चमन-ए-काएनात में
मोती के जैसे गुच्छे हों ज़र-कार पात में
भौंरों की गूँज मस्त है हर किश्त-ज़ार में
बंसी बजाते किश्न है गोया बहार में
केसर कुसुम की ख़ूब दिल-अफ़ज़ा बहार है
गेंदों की हर चमन में दो-रूया क़तार है
इक आग सी लगाई है टेसू ने फूल के
क्या ज़र्द ज़र्द फूल खिले हैं बबूल के
हैं इष्ट देवताओं के मंदिर सजे हुए
हैं ज़र्द ज़र्द फूलों से कुल दर सजे हुए

बस देव-जी के लाल की झाँकी अजीब है
आनंद बे-हिसाब दिलों को नसीब है
बंसी जड़ाव सोने की लब से मिली हुई
दिल की कली कली है नज़र में खिली हुई
पीताम्बर नफ़ीस कमर में कसा हुआ
ख़ुशबू से हार फूल की मंदिर बसा हुआ
शानों पे बल पड़े हुए ज़ुल्फ़-ए-सियाह के
राधा से बार बार इशारे निगाह के
बाँकी अदाएँ देख के दिल लोट-पोट है
रुतकाम इस्त्री के कलेजे पे चोट है
कानों में कुण्डलों की चमक है जड़ाव से
राधा लजाई जाती है चंचल सुभाव से
प्यारी का हाथ अपनी बग़ल में लिए हुए
आँखें शराब-ए-हुस्न-ए-जवानी पिए हुए
दिल राधिका का बादा-ए-उल्फ़त से चूर है
कुहनी से ठेलने की अदा का ज़ुहूर है
चुपकी खड़ी है किश्न के रुख़ पर निगाह है
है पहलू-ए-जिगर में जगह दिल में राह है
उल्फ़त भरी जो बंसी की जानिब नज़र गई
गोया बसंत की राग की धुन मस्त कर गई
इस छब पे इस सिंगार पे दिल से निसार 'उफ़ुक़'
क़ुर्बान एक बार नहीं लाख बार 'उफ़ुक़'
ऐ किश्न नाज़िरीं को मुबारक बसंत हो
खेला जो अपने वो अबद तक बसंत हो ❑

लेख

शिक्षा दर्शन को भगिनी निवेदिता का अवदान

❑

❑

डॉ. कन्हैयालाल राहपुरोहित

राजनीति शास्त्र के गहन अध्येता एवं राजस्थानी भाषा विज्ञानी डॉ. कन्हैयालाल राज पुरोहित इस लंबे आलेख में फ्रांसीसी विदुषी भगिनी निवेदिता का विवेकानंद की सहयोगिनी के रूप में शैक्षिक अवदान पर प्रकाश डाल रहे हैं।❑ सं.

स्वामी विवेकानंद कहते हैं 'सच्ची शिक्षा वही है, जो हमें सही अर्थों में मनुष्य बनाने में सहायक हो।' शिक्षा के इस उन्नयनकारी स्वरूप को सांघातिक आघात ब्रिटिश सरकार के साम्राज्यवादी सोच व नीतियों से पहुंचा। भारतीयों में आत्महीनता का भाव भरने वाली उस शिक्षा पद्धति ने शिक्षित वर्ग को अपनी जड़ों से काटकर दिग्भ्रमित कर दिया।

भारतीयों के प्रबुद्धिकरण का दावा करने वाली उस शिक्षा पद्धति के खोखलेपन के बारे में शायर अकबर इलाहाबादी ने ठीक ही लिखा था–

वो अंधेरा ही भला था
कि कदम राह पर थे।
रोशनी लायी है
मंजिल से बहुत दूर मुझे।।

चिन्तशील भारतीयों ने उस खतरे को भलीभांति भांप लिया था। फलत: वे शिक्षा के ऐसे स्वरूप के निर्माण हेतु सचेष्ट हुए जो तिरोहित होते भारतीय जीवन मूल्यों को व संस्कारों को सबल बनाने में सहायक हों। भारतीय नवोत्थान के महानायक स्वामी विवेकानंद ने इस दिशा में पहल करते हुए अपने पहले पश्चिम प्रवास में वहां के प्रबुद्ध लोगों से इस लोक कल्याणकार्य में हाथ बंटाने को आग्रह किया।

स्वामीजी के अनुपम त्याग, चरित्रबल व देशभक्ति से प्रभावित होकर कतिपय पुण्यात्मा पश्चिमी महिलाओं ने जगद्हिताय स्वामीजी के पथ का 'अनुसरण करने का निश्चय किया। उन महीयसी महिलाओं में भगिनी निवेदिता शीर्षस्थ हैं।

स्वामीजी की मानसपुत्री, दिव्यभाव भूषिता भगिनी निवेदिता ने अपने महनीय जीवन और कार्यों से अपने अभिधान को अनन्य सार्थकता प्रदान कर दी। जन्मना विदेशी इस पुण्यश्लोका तपस्विनी ने उपासना भाव से भारत को मातृभूमि के रूप में अपनाकर अपना सर्वस्व उसकी सेवा में न्यौछावर कर दिया। सन् 1896 ई. के नवम्बर महीने में एक शाम को लंदन की अभिजात महिला लेडी इसाबेल मार्गेसन के आवास पर आयोजित संगोष्ठी में वेदान्त दर्शन पर स्वामी विवेकानंद का व्याख्यानएवं अनौपचारिक चर्चा आयोजित हुई। भगिनी निवेदिता (तत्कालीन मार्गरेट नॉबुल) ने वहीं पर सर्वप्रथम स्वामीजी के दर्शन किये। योद्धा सन्यासी द्वारा की गई धर्म व्याख्या व उनके व्यक्तित्व से वे

अभिभूत हो गईं। इसके पश्चात् लंदन के विभिन्न स्थानों पर स्वामीजी के भाषण और प्रश्नोत्तर कार्यक्रम आयोजित हुए। मार्गरेट उन सभी स्थानों पर उपस्थित रहकर स्वामीजी के धर्मोपदेश बड़े मनोयोग से सुनती थीं। शनैः शनैः स्वामीजी भी मार्गरेटकी सत्यनिष्ठा, दृढ़ता एवं सर्वोपरि आर्त मानवता के प्रति उनकी संवेदनशीलता से परिचित हो गये।

वे यह भलीभांति समझ गये कि उनके व्याख्यानों में नियमित रूप से उपस्थित रहने वाली यह तेजस्वी जिज्ञासु युवती वहां आने वाले अधिकांश लोगों से भिन्न थी। उन्होंने यह भी अनुभव कर लिया कि वह सामान्य मिट्टी से नहीं बनी है। नियति उसकी प्रतीक्षा कर रही है, जिसका संबंध किसी न किसी रूप में उनके मिशन से है।

पराधीन भारत की अवदशा से स्वामीजी अत्यन्त खिन्नता अनुभव करते थे। उनका विचार था कि भारत को यदि उन्नति के सोपानों पर आरोहण करना है तो जनसाधारण व महिलाओं का समुत्थान आवश्यक है।

इस महत्वपूर्ण किन्तु दुस्तर कार्य को संपन्न कर सकने में स्वामीजी ने मार्गरेट को सक्षम पाया। इसलिये भारत में स्त्री शिक्षा के चुनौतीपूर्ण कार्य को हाथ में लेने का मार्गरेट को आह्वान करते हुए उन्होंने कहा, 'मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत में एक बड़ा भविष्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। भारत के लिये, विशेषकर भारत के नारी समाज के लिये, पुरुष की अपेक्षा एक नारी कीं एक सिंहनी की आवश्यकता है। भारत माता अभी ऐसी महियसी नारी को जन्म नहीं दे पा रही है, इसलिये दूसरी जाति से उधार लेना पड़ेगा। तुम ठीक वैसी नारी हो, जिसकी हमें आवश्यकता है।'

'मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत में एक बड़ा भविष्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। भारत के लिये, विशेषकर भारत के नारी समाज के लिये, पुरुष की अपेक्षा एक नारी की, एक सिंहनी की आवश्यकता है। भारत माता अभी ऐसी महियसी नारी को जन्म नहीं दे पा रही है, इसलिये दूसरी जाति से उधार लेना पड़ेगा। तुम ठीक वैसी नारी हो, जिसकी हमें आवश्यकता है।'

स्वामीजी की निष्ठावान शिष्या मार्गरेट स्वदेश, स्वजन एवं अपना सुविधा संपन्न जीवन सब कुछ छोड़कर अपने गुरुदेव के भारत गठन के उदात्त कार्य में योगदान देरे हेतु 28 जनवरी, 1898 को भारत आ पहुंचीं। कलकत्ता पहुंचकर स्वामीजी द्वारा सौंपे गये कार्य के निष्पादन के लिये उन्होंने बागबाजार क्षेत्र का बोसवाड़ा लेन में एक कन्या विद्यालय में राष्ट्रीय आदर्श के अनुरूप लड़कियों के शिक्षण का शुभारंभ किया।

इस सिलसिले में भगिनी ने शहर के गणमान्य अग्रणी लोगों से मिलना जुलना प्रारंभ किया। उनसे हुई अपनी पहली भेंट में रविन्द्रनाथ ठाकुर ने उनसे अपनी बेटी की शिक्षा की जिम्मेदारी स्वीकार करने का आग्रह किया। इस पर भगिनी ने पूछा, ' आप अपनी बेटी के लिये किस प्रकार की शिक्षा के इच्छुक हैं ? ठाकुर का उत्तर था कि वे उसके लिये वैसी शिक्षा चाहते हैं, जिसका स्वरूप अंग्रेजी माध्यम के अनुरूप हो। इस पर भगिनी का कहना था कि 'आप बालिका पर शिक्षा का वह स्वरूप क्यों थोपना चाहते हैं, जो विदेशी है।' शिक्षा विषयक अपना अभिमत प्रकट करते हुए भगिनी ने कहा, 'मेरी योग्यता एवं अन्तर्भूत राष्ट्रीय कौशल की सम्मिलित शक्ति को उभारने में सक्षम हो। व्यक्ति की आंतरिक क्षमता का एक विदेशी ढांचें के बोझ तले निष्प्राण हो जाना मुझे स्वीकार्य नहीं है।'

बागबाजार में प्रारंभ किये गये कन्या विद्यालय का उद्देश्य लड़कियों को केवल शिक्षा प्रदान करना न होकर उनमें प्रसुप्त शिक्षा की चेतना को जागृत करना था। ईसाई मिशनरियों की भांति उनकी उन बालिकाओं के परिवारों में निजी पैठ बनाने व विशेष स्थान बनाने में कोई रुचि नहीं थी। उस समय के घोर रूढ़िवादी भारतीय समाज में अभिभावकगण कन्याओं की शिक्षा के पक्ष में नहीं थे।

बाग बाजार के हर मोहल्ले में घूम-घूम कर वे छात्राएं खोज लातीं। उन लड़कियों को इतिहास, भूगोल, प्राकृतिक विज्ञान तथा थोड़ी-बहुत अंग्रेजी सिखातीं। पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ सिलाई, चित्रांकन, हस्तशिल्प आदि सिखातीं। व्यायाम द्वारा शरीर को सबल स्वस्थ रखने के लिए भी प्रेरित करतीं। सर्वोपरि वे उनकी अन्तर्निहित धर्म चेतना को स्फुरण प्रदान करतीं तथा भारतीय संस्कृति के आधारभूत मूल्यों से उन्हें संस्कारित करतीं। उनका सदैव यह प्रयास रहता

कि आचार-व्यवहार, भाषा, वेशभूषा, शिक्षा संगीत आदि सभी के माध्यम से छात्राओं में राष्ट्रीय भाव सुदृढ़ रूप से अंकित हों। विद्यालय में प्रतिदिन 'वंदे मातरम्' गीत गाने का प्रचलन था। कोई भी स्वदेशी वस्तु चाहे कितनी ही नगण्य क्यों न हो, उनके लिये देवता के विग्रह के समान आदरणीय होती थी।

बालिकाओं की शिक्षा के संबंध में स्वामीजी ने उनसे कहा था कि सनातन धर्म के आदर्श-त्याग एवं सेवा से कभी भी उनका अलगाव न हो। भारत की बालिकाओं को शिक्षित करने की परम् आवश्यकता है, किन्तु यह आदर्श सर्वोच्च होना चाहिये। भगिनी ने पूर्ण निष्ठा से स्वामीजी के इस निर्देश का पालन किया। यद्यपि विद्यालय की बालिकाओं के प्रति उनका प्रेम निस्सीम था पर अनुशासन बनाये रखने में वे कोई कोताही नहीं बरतती थीं।

भारत आकर जब उन्होंने गुरुदेव के आदर्शानुसार राष्ट्रीय बोध जागृत करने हेतु स्वयं को समर्पित किया, तब उन्होंने निश्चय किया कि इस संबंध में लेखनी ही उनकी मूल शक्ति होगी। इस दृष्टि से वे 'मॉडर्न रिव्यू' 'द स्टेट्समेन', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'डॉन', 'प्रबुद्ध भारत' आदि अनेक भारतीय व विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से धर्म, साहित्य, समाज, राजनीति, शिल्प शिक्षा, विज्ञान आदि विविध विषयों पर लेख लिखतीं। बोसपाड़ा स्थित उनके निवास स्थान पर समकालीन अनेक विशिष्ट व्यक्ति आते थे। वे उनकी बहुमुखी प्रतिभा से मंत्र मुग्ध हो जाते। इस सबके बावजूद बाग बाजार स्थित विद्यालय उनके अंत: स्थल में बसा रहता। उन्हें विश्वास था कि इस विद्यालय की छात्राओं में से ही भविष्य में गार्गी एवं मैत्रेयी का आविर्भाव भारत में होगा।

कितनी सामाजिक प्रतिकूलताओं, शारीरिक कष्टों एवं निर्धनता से दो-दो हाथ करके वे अपना विद्यालय चलाती थीं, हम इससे अनभिज्ञ हैं। वस्तुत: इस विद्यालय को चलाने के लिए उन्हें अर्द्धाहार किंवाअनाहर भी रहना पड़ता था। पहले-पहल कोई हिन्दू महिला उन्हें म्लेच्छ समझकर उनके यहां परिचारिका का कार्य करना नहीं चाहती थी। खाना पकाने की असुविधा के कारण वे दूध एवं फलसेबन कर ही दिन व्यतीत करतीं।

अपने ध्येय के प्रति भगिनी के सर्मपण भाव के बारे में रविन्द्रनाथ लिखते हैं,' मैंने ऐसी अन्य कोई शख्सियत नहीं देखी जिसमें उनकी भांति किसी ध्येय के लिये सर्वतोभावेन सर्मपण करने की सामथर्य हो।' उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत की प्रगति देश के महिला वर्ग में ऐसी शिक्षा के प्रसार पर निर्भार करेगी जिसमें राष्ट्र की पुरातन कीर्ति व ज्ञान की अगाध पूंजी का अभिनव वैज्ञानिक सत्यों के साथ संयोजन हो। इस विचार से प्रेरित होकर उन्होंने महिलाओं के लिये एक नवीन प्रकार की शिक्षण संस्था स्थापित की जिसमें अध्यपन की नई पद्धति अपनायी गई,जिसके फलस्वरूप वे भारतीय महिलाओं के हृदय में अपने लिये प्रगाढ़ प्रेमयुक्त स्थान बना सकीं। उन्होंने अपनी छात्राओं के मानव में सत्य, मैत्रीभाव और उत्तम आदर्शों के बीज वपन कर दिये।

बालिकाओं की शिक्षा के संबंध में स्वामीजी ने उनसे कहा था कि सनातन धर्म के आदर्श-त्याग एवं सेवा से कभी भी उनका अलगाव न हो। भारत की बालिकाओं को शिक्षित करने की परम् आवश्यकता है, किन्तु यह आदर्श सर्वोच्च होना चाहिये। भगिनी ने पूर्ण निष्ठा से स्वामीजी के इस निर्देश का पालन किया।

स्वामीजी ब्रह्मचारिणियों के लिये एक मठ की स्थापना के इच्छुक थे। उनकी इस अच्छा को मूर्तरूप देने के लिये भगिनी ने विद्यालय प्रारंभ किया। प्रथमत: यह अविश्वसनीय प्रतीत होगा कि निवेदिता ने एक छोटे से विद्यालय के लिये संपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया। इसके लिये भारतीय समाज के पुनरुत्थान के संबंध में उनकी सुदृढ़ धारणाओं को समझना आवश्यक है। उनके अनुसार संसार में एकमात्र सच्चा धर्म मानवीय प्रकृति की सम्पूर्ण संभावना को चरितार्थ करना है। अन्त:स्थ मानवता को जागृत करना शिक्षा का उद्देश्य है। इसके तरीके काल व स्थान के अनुसार बदलते रहते हैं।

भारत की स्थिति के मद्देनजर आवश्यक शिक्षा के स्वरूप पर भगिनी ने अपने ग्रंथ 'द वेब ऑफ इंडियन लाइफ' और 'द मास्टर एज आई सा हिम' में विस्तार से चर्चा की है। उनके अनुसार बाह्य ज्ञान और शक्ति का संचयन शिक्षा नहीं है। अपितु स्वयं के प्रयत्नों से अपनी सहजात क्षमताओं की अभिवृद्धि को यह संज्ञा दी जा सकती

है। भारत की शिक्षा का आधार बलिदान और प्रेम है। पुस्तकों तक सीमित जानकारी एक पृष्ठ पर अक्षर उकेरने के सिवाय कुछ नहीं है। शिक्षा एक चिंतनधारा के रूप में व्यक्ति के दिलो दिमाग में जीवन्तता प्राप्त करती है। ज्ञान द्वारा शासित व्यक्ति के लिये शिक्षा बाह्य सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया मात्र नहीं रह जाती है। वह उस चीज का आभयन्तरिक अनुभव बन जाती है जो पहले अनुभव की परिधि से बाहर था। तब व्यक्ति के छोटे-बड़े प्रत्येक कार्य में, उसके प्रत्येक विचार और शब्द में प्रतिक्षण उसकी शिक्षा की सार्थकता स्पष्ट होने लगती है।

वे बच्चों को निरीक्षण, क्रीड़ा व निर्मिति के माध्यम से शिक्षा शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पर जोर देती हैं। उन्होंने औपचारिक विक्टोरियाई शिक्षा का दमघोटू जड़ता का मुखर विरोध किया।

स्विस शिक्षा सुधारक पेस्टालोजी और जर्मन शिक्षाविद् फ्रेडरिक फ्रॉबेल के विचारों का उन्होंने गहरा अध्ययन किया। वस्तुत: शिक्षा विषयक उनके विचारों का स्वरूप कतिपय पाश्चात्य विचारकों और अपने गुरुदेव की मान्यताओं से निर्धारित हुआ था। साथ ही इंग्लैंड व भारत में विद्यालयों में अध्यापन के दौरान हुए व्यावहारिक अनुभवों ने भी उनके विचारों की दिशा निर्धारित की। सन् 1892 ई. में लंदन के विम्बल न इलाके में उन्होंने अपने स्वयं के विद्यालय में फ्रॉबेल और पेस्टालोजी द्वारा प्रतिपादित 'बच्चों की मुक्ति' से अभिप्रेत शिक्षा विषयक आधुनिक 'स्वतंत्र' तरीकों को प्रयुक्त किया।

पेस्टोलोजी की भांति वे भी शिक्षा को सर्वोच्च सामाजिक कर्त्तव्य मानती हैं। शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने पेस्टालोजी की दो महान् खोजों का उल्लेख किया है। ये ही खोजें उनके विचारों की आधार भूमि बनीं। उनकी दृष्टि में व्यक्ति की शिक्षा के स्तर का निर्धारण पठन से नहीं अपितु चिंतन से होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में उनके प्रयास स्वाभाविक रूप से पश्चिमी स्रोतों से ग्रहण किये गये ज्ञान पर आधारित थे किन्तु उनका अभिमत था कि भारतीय पाठशालाओं में किंडर गार्टन पद्धति का प्रवर्तन भारतीय शैशव के प्रेक्षण का परिणाम होना चाहिये, जिसमें भारतीय जीवन व उसके आदर्शों का प्रतिबिम्ब हो।

उस समय भारत में एक कार्यपालिका आदेश जारी करके सभी स्कूलों में अध्यापन की किंडर गार्टन पद्धति अपनाना आवश्यक कर दिया गया था। भगिनी की दृष्टि में ऐसा करना उचित नहीं था। उनके अनुसार सही कार्य दिशा एक विदेशी प्रक्रिया अपनाना नहीं अपितु भारतीय माहौल के अनुरूप अध्यापन शैली विकसित कर उसे कार्यान्वित करना सही निर्णय होगा।

भगिनी का मानना था कि किंडर गार्टन की भारतीय पद्धति का स्वरूप भारतीय शिक्षाविद् ही विकसित कर सकते हैं। वे कहती हैं, 'बालक की प्रत्येक आत्म सक्रियता को सहानुभूतिशील शिक्षक द्वारा प्रोत्साहित करने के अलावा उसका अध्ययन किया जाना व उसे समझा जाना भी आवश्यक है।

भारत में शिक्षा के स्वरूप के बारे में उनका स्पष्ट अभिमत था कि आज भारत में शिक्षा न केवल राष्ट्रीय अपितु राष्ट्र निर्मात्री होनी चाहिये। सही शिक्षा के अभाव में कोई भी राष्ट्र महानता के सोपान पर आरोहण नहीं कर सकता और यह कार्य स्वयं देशवासियों का उत्तर दायित्व है।

भारत में स्त्रियों की दुर्दशा को देखते हुए स्वामीजी ने महिला शिक्षा के महत् कार्य के लिये ही भगिनी को भारत आगमन का आह्वान किया था। भगिनी ने इस मुद्दे पर काफी गहराई से विचार किया है। उनकी दृष्टि में महिलाएं समाज की धुरी थीं, अत: राष्ट्रोत्थान की दिशा में किये जाने वाले किसी भी प्रयत्न में केन्द्रीय मुद्दा स्त्रियों की सर्व समावेशी प्रगति होगा। महिलाओं की सहायता और सहयोग के बिना वर्तमान समय के कोई भी बड़े काम निर्णायक रूप से पूरे नहीं हो सकते।

विनयशीलता को उन्मूलित करने वाली, कोमलता का हरण करने वाली शिक्षा को वे रंचमात्र भी सच्ची शिक्षा की श्रेणी में नहीं रखतीं। उनके अनुसार ग्रहण करने योग्य समस्त शिक्षा प्रथमत: चरित्र के विकास और सुदृढ़ीकरण से सम्बद्ध होनी चाहिये। केवल गौण रूप से उसे बौद्धिक उपलब्धियों से सरोकार रखना चाहिये।

वे भारतीय नारीत्व के महान् आदर्श को क्षति पहुंचाए बिना हिन्दू स्त्री को आधुनिक सक्रियता प्रदान करने को उत्सुक थीं। उन्होंने घोषित किया कि आज का अहम् मुद्दा शिक्षा का मुद्दा था। स्त्री का भविष्य केवल भारतीय प्रश्न होकर पूरी मानवता से जुड़ा प्रश्न था।

वे महसूस करती थीं कि नये

कदम तो उठाने ही होंगे। परिवर्तन आवश्यक है। पुरातन पवित्रता को नुकसान पहुंचाए बिना नवीन जानकारी प्राप्त करनी है। भारतीय स्त्री की शिक्षा का आधुनिकीकरण होनी ही चाहिये क्योंकि प्रत्येक पुरुष व महिला का अधिक व्यापक दृष्टिकोण युग की मांग है।

उस कठिन परिस्थिति में जब भविष्य की महिला हमारे मन को मथ रही थी, निवेदिता का गहरा विश्वास था कि महिलाओं की शिक्षा में परिवर्तन होना ही चाहिये। जीवन की वृहत्तर योजना में उनके लिये स्थान बनाना ही होगा। सत्य को पौराणिक से वैज्ञानिक प्रतिवेश में ले जाना होगा। समय व युग के सही बोध और वैज्ञानिक कठोरता वाले आधुनिक मानस को पौवात्य अभिव्यक्ति खोजनी होगी। आधुनिक विचारों को महिलाओं तक तुरन्त पहुंचाने के लिये वे परंपरागत सांस्कृतिक पथों के माध्यम से अभिनव ज्ञान प्रदान करने के पक्ष में थीं।

वे कहती हैं, आधुनिक चेतना की खास-खास बातों को प्रत्येक पूर्वी भाषा में स्थान मिलना ही चाहिये क्योंकि व्यक्ति मातृभाषा के माध्यम से आसानी से सीखता है। भारतीय स्त्री को उसका पुरातन चरित्र खोए बिना आधुनिक युग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दक्ष बनाया जाना है।

भारत का पुनरुत्थान महिलाओं के माध्यम से होगा, ऐसा मानते हुए भगिनी का कहना था आने वाले वर्षों में राष्ट्रीय भावना संचारित करने वाली हमारी ऊर्जा हमारी महिलाओं को देश के प्रति अधिक निष्ठावान बनाने के लिए प्रयुक्त करनी होगी। यह निष्ठा अपने पिताओं, भाईयों व पतियों के प्रति निष्ठा से बढ़ कर होनी थी और उन्हें इस योग्य बनाया जाना था कि वे यह समझ सकें कि कौनसी बात परविार की अपेक्षा राष्ट्र का हित संवर्धन अधिक करेगी। प्रश्न यह था कि महिलाएं राष्ट्रीयता जैसे महान् विचार को ग्रहण कैसे करें ? निवेदिता आश्वस्त करती हैं कि जब संसार किसी युगीन विचार के लिये परिपक्व है, वह विचार स्वयं को प्रतीक्षारत चेतना में चाराओं और ऊंड़ेलता है। जिस समय भारतीय स्त्री का पिछड़ापन देशवासियों के लिये हताशा का कारण बना हुआ था, भगिनी ने उनकी क्षमता में अगाध विश्वास व्यक्त किया।

भगिनी के अनुसार शिक्षा की मुख्य महत्ता वैयक्तिक नहीं, सामाजिक और सामुदायिक है और यूरोपीय सांचे में ढ़ली महिला भारतीय समाज में वैसे ही असंगत है जैसे गायों के बीच मृग। एक मिथ्या शिक्षा ने भारतीय कन्या को अपने ही लोगों व संस्थाओं का आलोचक बना दिया है और स्वयं दोनों में से किसी आदर्श को पूरा नहीं करती।

शिक्षा का अर्थ व प्रकृति स्पष्ट करते हुए वे बताती हैं कि 'सर्वोपरि रूप से शिक्षा एक नैतिक कर्त्तव्य है और मुख्यत: एक नैतिकप्राणी के रूप में मनुष्य से सम्बद्ध है।'

एक महान् शिक्षाशास्त्री होने के नाते वे अंग्रेजी शासन द्वारा प्रचलित की गई शिक्षा प्रणाली के आधारभूत दोषों को आसानी से चिन्हित कर सकीं। इसीलिये वे महिला शिक्षा को बहुआयामी बनाने के साथ उसे भारत केन्द्रित बनाने के पक्ष में थीं। क्योंकि ईसाई मिशनरियों के विषैले व अनर्गल प्रचार ने भारत के लोगों को निराशावादी बना दिया था।

उन्होंने स्त्री शिक्षा के बारे में एक अहम् प्रश्न उठाया और वह यह कि हम अपनी बहिनों व बेटियों को शिक्षित करने के इच्छुक हैं किन्तु प्रश्न यह है कि इसका प्रेरक ध्येय क्या है ? क्या ध्येय यह है कि वे विवाह के बाजार में बेहतर स्थान पाने के लिये यूरोपीय उपलब्धियों की निस्तेज सज-धज के सुन्दर परिधान धारण कर बाहर निकलें? अगर ऐसा है तो जो शिक्षा हम उन्हें देने जा रहे हैं, वह जीवन के विषम पथ में उनकी मददगार नहीं बनने वाली है। वस्तुत: यह तो केवल विशेषाधिकार का विस्तार है, विमुक्ति नहीं और ऐसी शिक्षा ग्रहण करने से तो उससे वंचित रहना ही अच्छा है।

वस्तुत: भगिनी का सम्पूर्ण शिक्षा दर्शन मातृशक्ति को भारतीयता की चेतना से स्पन्दित करने पर केन्द्रित था। उन्होंने जिसे सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से भारत के चिन्मय स्वरूप को समझा था, वैसा बहुत कम लोग कर पाए हैं।

भारतीयों के उस तबके की उन्होंने तीव्र भर्त्सना की जो दास्यभाव से यूरोपीय सभ्यता के समक्ष नतशिर हो रहा था। भारत की परंपराओं में जो कुछ उत्तम, मनोहारी और शाश्वत था, उसे आत्मसात् करने का उन्होंने पूरी निष्ठा व गंभीरता से प्रयास किया। उनके तप: पूत जीवन का निचोड़ दार्जिलिंग में उनकी समाधि पर अंकित इस वाक्य में समाहित है, 'यहां चिरशान्ति में लीन हैं भगिनी निवेदिता जिन्होंने अपना सर्वस्व भारत की सेवा में अर्पित कर दिया।'❑

सी-2, 'रतन स्मृति',
पंचवटी कॉलोनी, रातानाड़ा, जोधपुर (राज.)
मो.9460216100

डिजिटल पढ़ना प्रिन्ट जितनी समझ नहीं पैदा करता

❑

❑
रॉस पोमरॉय

लेखक रियल क्लियर साइंस के संपादक है। इस आलेख में प्रिंट रीडिंग पर डिजिटल रीडिंग पर पड़ रहे असर पर विमर्श कर रहे हैं। ❑सं.

क्या कभी कोई दूसरा हैरी पॉटर होगा? 1997 और 2007 के बीच, ऐसा लग रहा था जब बच्चे बच्चा, यहां तक कि उनके माता-पिता भी, जे.के. राउलिंग के काल्पनिक उपन्यास पढ़ रहे थे। मोटे हार्डकवर वाले उपन्यासों को दो, तीन, चार या अधिक बार पढ़ते हुए लोगों ने लंबा समय बिताया। लेकिन 21वीं सदी की शुरुआत के बाद से, जब वेबसाइट लेखों, ब्लॉगों, ईमेल, सोशल मीडिया पोस्ट और चैट की डिजिटल रीडिंग ने प्रिंट रीडिंग की जगह लेना शुरू कर दिया है तब से मनोरंजन के लिए पढ़ने वाले बच्चों की दर में गिरावट आई है। क्या हम फिर कभी किसी अन्य पुस्तक श्रृंखला को हैरी पॉटर की तरह बच्चों का ध्यान आकर्षित करते नहीं देख पाएंगे?

हाल ही में प्रकाशित एक विश्लेषण में पाया गया है कि डिजिटल पढ़ने की तरफ व्यापक झुकाव से युवाओं की सांस्कृतिक विचारधारा में पुस्तकों का प्रभाव कम होने का हानिकारक प्रभाव हो सकता है क्योंकि नई परिस्थिति में बच्चों के पढ़ने की समझ के कौशल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

वैज्ञानिकों ने पिछली बार 2011 में प्रिंट पढ़ने से बच्चों के समझने के कौशल पर होने वाले प्रभाव का के 99 अध्ययनों की समीक्षा की थी। उम्मीद के मुताबिक समीक्षकों ने पाया कि जितना अधिक बच्चे प्रिन्ट पढ़ रहे थे वे उसे समझने और याद रखने में उतने ही बेहतर सक्षम हुए थे। इसके अलावा, प्रिंट पढ़ना एक अच्छे चक्र को बढ़ावा देता हुआ दिखाई दिया: जैसे-जैसे युवा पाठकों ने लंबे और अधिक जटिल पाठों का उपभोग किया, उनके पढ़ने के कौशल में सुधार होता गया, जिससे उन्हें और भी अधिक जटिल लिखित कार्यों को आगे पढ़ने के लिए प्रेरित किया, जिससे उनकी क्षमताओं में और वृद्धि हुई।

नए मेटा-विश्लेषण के लिए, स्पेन में वालेंसिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने करीब 470,000 प्रतिभागियों के साथ हुए 26 अध्ययन एकत्र किए। प्रत्येक अध्ययन ख़ाली समय में डिजिटल पढ़ने के प्रभाव का समझ पर असर का पता लगाने के लिए था। उन्होंने पाया कि डिजिटल पढ़ने से भी समझने के कौशल में सुधार होता है, लेकिन यह लाभकारी प्रभाव प्रिंट पढ़ने की तुलना में छह से सात गुना कम होता है। बच्चों में तो यह सबसे कम होता है।

अध्ययनकर्ताओं का मानना है कि डिजिटल पढ़ने का चलन शुरुआती पाठकों को पढ़ने का एक मजबूत बुनियादी आधार बनाने से वंचित कर सकता है। खास कर उस महत्वपूर्ण अवधि में जब वे पढ़ने से सीखने की ओर स्थानांतरित हो रहे हों।

अध्ययनकर्ताओं ने बताया है कि डिजिटल रीडिंग बहुत कम लाभदायक क्यों प्रतीत होती है? सबसे पहले,

डिजिटल पाठ की भाषा बहुत कम गुणवत्ता वाली होती है। चैट करते समय, लोग अक्सर सरलीकृत शब्दावली के साथ अनौपचारिक भाषा का उपयोग करते हैं, और वे व्याकरण के नियमों की उपेक्षा करते हैं। सामग्री भी आम तौर पर बहुत छोटी होती है, जिसमें जटिल कथाओं और कई पात्रों के साथ लंबे कार्यों को समझने और उनका पूरा आनंद लेने के लिए फोकस और धारण करने की आवश्यकता नहीं होती है।

अमेरिकी विश्वविद्यालय में विश्व भाषाओं और संस्कृतियों के एक उभरते प्रोफेसर, नाओमी एस. बैरन के अनुसार, एक पुस्तक के भौतिक गुण भी विशिष्ट रूप से सूचना प्रतिधारण को बढ़ावा दे सकते हैं। कागज के साथ, अलग-अलग पृष्ठों के दृश्य, भूगोल के साथ-साथ शाब्दिक रूप हाथ में होता है। लोग अक्सर जो कुछ उन्होंने पढ़ा है उसकी याददाश्त को इस बात से जोड़ते हैं कि वह किताब में किस पेज पर कहां था। थी।'' उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा, किसी पुस्तक या पत्रिका के भौतिक गुण - गंध, रूप, अनुभव - भी पढ़ने को और अधिक आनंददायक बना सकते हैं। अगर पाठकों को पढ़ने के माध्यम में आनंद मिलता है, तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा कि इस तरह के आनंद से अधिक समझ पैदा होगी।

डिजिटल स्रोतों पर सामग्री पढ़ते समय, सोशल मीडिया, यूट्यूब और वीडियो गेम से ध्यान अक्सर बस एक क्लिक की दूरी पर होता है, जिससे पाठ को पूरीतरह समझ पाने में बाधा आती है। वेस्ट वर्जीनिया विश्वविद्यालय में स्नातक छात्रों के एक हालिया अध्ययन में, दो-तिहाई ने स्वीकार किया कि पढ़ते समय वे सोशल मीडिया को अक्सर या बहुत बार चेक करते हैं। आधे से अधिक उत्तरदाताओं ने कहा कि सोशल मीडिया ने उनकी पढ़ने की आदतों पर नकारात्मक प्रभाव डाला है, जबकि 45 प्रतिशत ने कहा कि इसका तटस्थ प्रभाव रहा और 2.5 प्रतिशत ने कहा कि इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

चूंकि युवाओं में आवेग नियंत्रण कमजोर होता है, इसलिए डिजिटल रीडिंग में संलग्न होने पर ध्यान भटकने के प्रति वे वयस्कों की तुलना में अधिक संवेदनशील हो सकते हैं। उनके पास शब्दावली और व्याकरण के नियमों में महारत हासिल करने की भी कम संभावना होती है, जिसका अर्थ है कि वे सोशल मीडिया पर और दोस्तों के साथ चैट में अधिक अल्पविकसित लेखन के संपर्क में आएंगे। यही कारण है कि लेखक अनुशंसा करते हैं कि माता-पिता और शिक्षक डिजिटल सामग्री के साथ बच्चों के समय को सीमित करें, या कम से कम मुद्रित कार्यों या स्याही-स्क्रीन के साथ बुनियादी ई-रीडर का उपयोग करने पर जोर दें।

एक अन्य अध्ययन में प्रिंट फॉर्म बनाम किंडल पर काम करते समय पढ़ने की समझ में कोई अंतर नहीं दिखाया गया, हालांकि पाठक कहानी की अस्थायीता में घटनाओं का पता लगाने में उतने कुशल नहीं थे।)

क्या किशोर अपने बड़ों की सलाह मानेंगे? विद्वान लोग मानते हैं कि वे ऐसा कर सकते हैं।

अमेरिकन लाइब्रेरी एसोसिएशन के हालिया डेटा मिलेनियल्स (उम्र 26-40) की तुलना में आज की पीढ़ी ज़ेड (उम्र 13-25) द्वारा कुछ आश्चर्यजनक विकल्पों की ओर इशारा करते हैं। उनके अध्ययन के अनुसार, यह युवा केवल मिलेनियल्स की तुलना में प्रति माह अधिक किताबें पढ़ रहे हैं (संभवतः आनंद के लिए), बल्कि अपने पुराने भाइयों की तुलना में अधिक प्रिंट भी पढ़ रहे हैं। उन्होंने अपने स्वयं के कुछ शोधों पर भी गौर किया, जिनसे पता चलता है कि अधिकांश छात्र आसानी से स्वीकार करते हैं कि प्रिंट पढ़ते समय वे बेहतर सीखते हैं और ध्यान केंद्रित करते हैं।

क्या अगली पीढ़ियां फिर से प्रिन्ट की ओर आ सकती हैं? यह तो समय ही बताएगा। ❑

डिजिटल पठन से समझ का कौशल कम होता है

हाल ही में प्रकाशित एक विश्लेषण में पाया गया है कि डिजिटल पढ़ने के व्यापक झुकाव से युवाओं की सांस्कृतिक विचारधारा में पुस्तकों का प्रभाव कम होने का हानिकारक असर हो सकता है। विश्लेषकों का कहना है कि नई परिस्थिति में बच्चों के पढ़ने की समझ के कौशल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

वैज्ञानिकों ने पिछली बार 2011 में प्रिंट पढ़ने से बच्चों के समझने के कौशल पर होने वाले प्रभाव का के 99 अध्ययनों की समीक्षा की थी। उम्मीद के मुताबिक समीक्षकों ने पाया कि जितना अधिक बच्चे प्रिन्ट पढ़ रहे थे वे उसे समझने और याद रखने में उतने ही बेहतर सक्षम हुए थे। इसके अलावा, प्रिंट पढ़ना एक अच्छे चक्र को बढ़ावा देता हुआ दिखाई दिया: जैसे-जैसे युवा पाठकों ने लंबे और अधिक जटिल पाठों का उपभोग किया, उनके पढ़ने के कौशल में सुधार होता गया, जिससे उन्हें और भी अधिक जटिल लिखित कार्यों को आगे पढ़ने के लिए प्रेरित किया, जिससे उनकी क्षमताओं में और वृद्धि हुई।

नए मेटा-विश्लेषण के लिए, स्पेन में वालेंसिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने करीब 470,000 प्रतिभागियों के साथ हुए 26 अध्ययन एकत्र किए। प्रत्येक अध्ययन ख़ाली समय में डिजिटल पढ़ने के प्रभाव का समझ पर असर का पता लगाने के लिए था। उन्होंने पाया कि डिजिटल पढ़ने से भी समझने के कौशल में सुधार होता है, लेकिन यह लाभकारी प्रभाव प्रिंट पढ़ने की तुलना में छह से सात गुना कम होता है। बच्चों में तो यह सबसे कम होता है।

अध्ययनकर्ताओं का मनना है कि डिजिटल पढ़ने का चलन शुरुआती पाठकों को पढ़ने का एक मजबूत बुनियादी आधार बनाने से वंचित कर सकता है। खास कर उस महत्वपूर्ण अवधि में, जब वे पढ़ने से सीखने की ओर जा रहे होते हों।

अध्यायनकर्ताओं ने साहित्य का हवाला देते हुए बताया कि डिजिटल रीडिंग बहुत कम लाभदायक क्यों प्रतीत होती है? सबसे पहले, डिजिटल पाठ की भाषा बहुत कम गुणवत्ता वाली होती है। चैट करते समय, लोग अक्सर सरलीकृत शब्दावली के साथ अनौपचारिक भाषा का उपयोग करते हैं, और वे व्याकरण के नियमों की उपेक्षा करते हैं। सामग्री भी आम तौर पर बहुत छोटी होती है, जिसमें जटिल कथाओं और कई पात्रों के साथ लंबे कार्यों को समझने और उनका पूरा आनंद लेने के लिए फोकस और धारण करने की आवश्यकता नहीं होती है।❑

तुलसी

❑

देवेन्द्र भारद्वाज

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के उद्यान में लगे औषधीय पौधों और वृक्षों के परिचय के क्रम में हम इस बार 'तुलसी' का परिचय दे रहे हैं। ❑सं.

तुलसी के सन्दर्भ में कहा गया है। महाप्रसाद जननी सर्व सौभाग्य वर्धिनी।

आदि व्याधि हरा नित्यम तुलसी त्वं नमोस्तुते ।।

अर्थात मूल रोगों का नाश करने वाली हे तुलसी, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। साथ ही माते आप गोविंदहृदयानंद हरिणी हैं, मैं नारायण की पूजा के लिए आपको चुनता हूं, मैं आपको प्रणाम करता हूं। तुलसी केवल शरीर स्वास्थ्य की दृष्टि से ही नहीं, अपितु धार्मिक, आध्यात्मिक, पर्यावरणीय एवं वैज्ञानिक आदि विभिन्न दृष्टियों से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

तुलसी, (ओसिममटेनुइलोरम), पुदीना परिवार (लैमियासी) का पौधा है, तुलसी भारतीय उपमहाद्वीप की मूल निवासी है और पूरे दक्षिण पूर्व एशिया में उगती है। तुलसी का पौधा आमतौर पर 30 से 60 सेमी तक ऊँचा होता है और इसके फूल छोटे-छोटे सफेद और बैगनी रंग के होते हैं। इसका पुष्पकाल एवं फलकाल जुलाई से अक्टूबर तक होता है। पौधा सामान्य रूप से दो-तीन वर्षों तक हरा बना रहता है। इसके बाद इसकी वृद्धावस्था आ जाती है। पत्ते कम और छोटे हो जाते हैं और शाखाएँ सूखी दिखाई देती हैं। इस समय उसे हटाकर नया पौधा लगाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। सभी प्रकार की मिट्टी में यह अच्छी तरह पनपता है। खनिज युक्त दोमट मिट्टी से लेकर बिना खनिज वाली मिट्टी, क्षारीय से लेकर अम्लीय मिट्टी में अच्छी तरह पनपता है।

तुलसी की सामान्यत: पांच प्रजातियाँ महत्वपुर्ण हैं: ऑसीमम अमेरिकन (काली तुलसी) गम्भीरा या मामरी।

ऑसीमम वेसिलिकम (मरुआ तुलसी) मुन्जरिकी या मुरसा। आसीमम ग्रेटिसिकम (राम तुलसी / वन तुलसी / अरण्यतुलसी)।ऑसीमम किलिमण्ड-चेरिकम (कर्पूर तुलसी)। ऑसीमम सैक्टम या ओसीमम टेनुइलोरम ।

इनमें ऑसीमम सैक्टम जिसे अब ओसीमम टेनुइलोरम कहने लगे हैं, को प्रधान या पवित्र तुलसी माना गया है।

भारत के अधिकांश घरों में तुलसी के पौधे की पूजा की जाती है। धार्मिक शास्त्रों में तुलसी का देवी लक्ष्मी का रूप माना जाता है। भगवान विष्णु का तुलसी अति प्रिय होती है। इसी कारण से तुलसी के दूसरा नाम हरि प्रिया भी है। वास्तु के अनुसार घर में सुख-शांति और समृद्धि के लिए तुलसी के पौधे को उत्तर,उत्तर-पूर्व या पूर्व दिशा में लगाना चाहिए। इन दिशाओं में तुलसी का पौधा लगाना घर में सकारात्मक ऊर्जा पैदा करने वाला होता है।

एक ओर जहाँ चरक संहिता, सुश्रुत संहिता जैसे आयुर्वेद के ग्रंथों, पद्म पुराण, स्कंद पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि पुराणों तथा उपनिषदों एवं वेदों में भी तुलसी की महत्ता, उपयोगता बतायी गयी है, वहीं दूसरी ओर युनानी, होमियोपैथी एवं एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में भी तुलसी एक महत्त्वपूर्ण औषधि मानी गयी है तथा इसकी खूब-खूब सराहना की गयी है।

विज्ञान ने विभिन्न शोधों के आधार पर माना है कि तुलसी एक बेहतरीन रोगाणुरोधी, तनावरोधी, दर्द-निवारक, मधुमेहरोधी, ज्वरनाशक, कैंसरनाशक, चिंता-निवारक, अवसादरोधी, विकिरण-रक्षक है।

तुलसी की कई प्रजातियां मिलती हैं। जिनमें श्वेत व कृष्ण प्रमुख

हैं। इन्हें राम तुलसी और कृष्ण तुलसी भी कहा जाता है। हरी पत्तियों वाली तुलसी को श्री-तुलसी ('सौभाग्यशाली तुलसी') कहा जाता है। इस किस्म को राम-तुलसी के नाम से भी जाना जाता है। गहरे बैंगनी पत्तों और बैंगनी तने वाली तुलसी को श्यामा-तुलसी या कृष्ण-तुलसी कहा जाता है, ।

तुलसी के पत्तों से बनी मालाएं, तुलसी मिश्रित जल, खाद्य पदार्थ पूजा में चढ़ाए जाते हैं। तुलसी के तने से बनी माला को भक्तगण पहनना अपना सोभाग्य समझते हैं। तुलसी के पौधे का प्रत्येक भाग पूजनीय और पवित्र माना जाता है। यहां तक कि पौधे के आसपास की मिट्टी भी पवित्र है।

शास्त्रों के अनुसार तुलसी के पत्ते कुछ खास दिनों में नहीं तोडने चाहिए। ये दिन हैं एकादशी, रविवार और सूर्य या चंद्र ग्रहण काल। यह औषधि भी है, तो मोक्ष प्रदायिनी भी है, शायद यही कारण है कि तिये की बैठक में इसका वितरण किया जाता है। तुलसी के अन्य नामों में 'वृन्दा' और विष्णुप्रिया' खास माने जाते हैं।

पदम पुराण में तुलसी के आठ नाम बताये गए है - वृंदा (सभी वनस्पतियों की आधि देवी), वृंदावनि, (जिनका उदभव व्रज में हुआ) विश्व पूजिता, विश्व पावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्ण जीवनी।

चरक संहिता और सुश्रुत-संहिता में भी तुलसी के गुणों के बारे में विस्तार से वर्णन है। भारतीय संस्कृति के चिर पुरातन ग्रंथ वेदों में भी तुलसी के गुणों एवं उसकी उपयोगिता का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त ऐलोपैथी, होमियोपैथी और यूनानी दवाओं में भी तुलसी का किसी न किसी रूप में प्रयोग किया जाता है।

तुलसी कड़वे व तीखे स्वाद वाली कफ, खांसी, हिचकी, उल्टी, कृमि, दुर्गंध, हर तरह के दर्द, कोढ़ और आंखों की बीमारी में लाभकारी है। तुलसी को भगवान के प्रसाद में रखकर ग्रहण करने की भी परंपरा है, ताकि यह अपने प्रा.तिक स्वरूप में ही शरीर के अंदर पहुंचे और शरीर में किसी तरह की आंतरिक समस्या पैदा हो रही हो तो उसे खत्म कर दे।

इसकी पत्तियों में कफ-वात दोष को कम करने, पाचन शक्ति एवं भूख बढ़ाने और रक्त को शुद्ध करने वाले गुण होते हैं। इसके अलावा तुलसी के पत्ते बुखार, दिल से जुड़ी बीमारियां, पेट दर्द, मलेरिया और बैक्टीरियल संक्रमण आदि के इलाज में बहुत फायदेमंद हैं। आयुर्वेद के अनुसार तुलसी में ऐसे औषधीय गुण होते हैं जो शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता (इम्यूनिटी) बढ़ाने में मदद करते हैं। यही कारण हैं कि आयुर्वेदिक चिकित्सक सर्दियों के मौसम या मौसम में बदलाव (ऋतु परिवर्तन) के दौरान तुलसी के सेवन की सलाह देते हैं। तुलसी के नियमित सेवन से शरीर जल्दी बीमार नहीं पड़ता है और कई मौसमी बीमारियों से लड़ने की क्षमता भी बढ़ती है। ❑

श्रद्धांजलि

भंवरसिंह चौधरी नहीं रहे

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सचिव और कार्यकारिणी के सदस्य रहे भंवरसिंह चौधरी का पिछले दिनों भीलवाडा में निधन हो गया। वे भीलवाड़ा जिला प्रौढ़ शिक्षा संघ के भी वर्षों तक अध्यक्ष रहे।

चौधरी मूल रूप से शिक्षक थे और शिक्षा विभाग में प्रशासनिक पदों पर भी कार्यरत रहे।

आचरण और विचारों से गांधीवादी चौधरी साहब समाज सेवा में लगे रहते थे तथा भीलवाड़ा के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में गिने जाते थे। ❑

चावल पर गांधी

महात्मा गांधी के विचारों ने दुनिया भर के लोगों को प्रेरित किया है जिनमें साहित्यकार और कलाकार भी शामिल हैं। इनमें एक प्रमुख कलाकार जयपुर की नीरू छाबड़ा भी हैं जो चावल पर सूक्ष्म लेखन के लिए देश–विदेश सर्वत्र प्रसिद्ध है। उन्होंने एक सुघड़ गृहिणी की जिम्मेवारी निभाते हुए अपनी कला को परवान चढ़ाया है। इस कलाकार ने महात्मा गांधी के विचारों को चावल के दाने पर उकेर कर अनेक कलाकृतियां बनाई है।

नीरू छाबड़ा सन् 1984 में चावल के एक दाने पर दो अक्षरों से सूक्ष्म लेखन की शुरुआत करके एक ही चावल के दाने पर 108 अक्षर लिखने का रिकॉर्ड बना चुकी हैं। अब वे महात्मा गांधी के विचारों को अपनी कला के जरिए युवा पीढ़ी तक पहुंचाने का काम कर रही है।

श्रीमती छाबड़ा का कहना है कि चावल अक्षत होता है, यह कभी खराब नहीं होता, इसलिए उन्होंने चावल पर कलाकृतियां बनाने का विचार किया।

हिंदी में संविधान की पूरी परिभाषा भी उन्होंने चावल पर लिखी है। णमोकार और गायत्री मंत्र भी चावल पर लिखे हैं। अंग्रेजी में 108 अक्षर के साथ भारत के संविधान पर लिखी हुई सभी लिपियों को चावल के दानों पर लिखने का भी कमाल उन्होंने कर दिखाया है।

न्यूयॉर्क शहर में बापू कि नई मूर्ति लगी

न्यूयॉर्क शहर के मेयर एरिक एडम्स और राज्य विधानसभा की एक भारतीय–अमेरिकी सदस्य जेनिफर राजकुमार ने एक नई महात्मा गांधी प्रतिमा का अनावरण किया है। एक साल से अधिक समय पहले रिचमंड हिल में 111वीं स्ट्रीट पर श्री तुलसी मंदिर के सामने स्थित पिछली मूर्ति अगस्त 2022 में दो बार तोड़े जाने के बाद यह नई मूर्ति लगाई गई है।

एडम्स ने कहा पिछले साल साउथ रिचमंड हिल में लगी गांधी जी की मूर्ति को तोड़ दिया गया था, लेकिन हमारी एकजुटता और पुनर्निर्माण की भावना नहीं तोडी जा सकी। आज, हम एक स्वर में कहने के लिए समुदाय के साथ खड़े हुए हैं: नफरत के लिए हमारे शहर में कोई जगह नहीं हैनई प्रतिमा का अनावरण यही संदेश देता है कि नफरत पर प्यार की हमेशा जीत होगी।

कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न अलंकरण

कर्पूरी ठाकुर ऐसे नेता थे, जिनका सम्मान सभी करते थे। उनके जीवन मूल्यों की आज भी सभी सराहना करते हैं।

कर्पूरी ठाकुर पचास, साठ और सत्तर के दशक में बिहार के समाजवादी आंदोलन की पैदाइश थे। वो इसी धारा के बड़े नेता बने और दो बार बिहार के मुख्यमंत्री बनने के साथ सोशलिस्ट पार्टियों के सर्वोच्च पदों तक गए। अपने जीवन में उन्होंने एक चुनाव के अलावा सारे चुनावों में जीत हासिल की। इस रिकॉर्ड से ज़्यादा शानदार है उनकी सादगी और संघर्ष का रिकॉर्ड। संघर्षों के बीच उनकी राजनीति निखरती गई, उनके निजी गुण सबके सामने आते गए और उनके बुनियादी राजनीतिक विचारों की स्वीकार्यता बढ़ती चली गई।

आज बराबरी वाले समाजवादी मूल्य, सामाजिक न्याय और हिन्दी प्रेम सभी दलों और राजनेताओं को प्रिय हो गए हों, लेकिन ये कर्पूरी ठाकुर ही थे जिन्होंने शिक्षा में अंग्रेज़ी की अनिवार्यता को खत्म किया था। उन्होंने सरकारी काम हिन्दी में करने की घोषणा की, लड़कियों के लिए पूरी पढ़ाई मुफ़्त की और सबसे पहले हिन्दी पट्टी में आरक्षण देने का फ़ैसला किया। आरक्षण में भी उन्होंने महिलाओं और ग़रीब अगड़ों के साथ पिछड़ों को भी दो श्रेणियों में बांटकर लाभ देने का फ़ैसला

किया था।

कर्पूरी ठाकुर ने कभी बुनियादी मूल्यों से समझौता नहीं किया. समाजवाद और सामाजिक न्याय उनके लिए सबसे बुनियादी मूल्य थे। शायद वो पक्के तौर पर तय कर चुके थे कि समाज के लिए काम करेंगे और कोई निजी संपत्ति नहीं बनाएंगे। पिता की झोपड़ी के अलावा उनके पास कोई ज़मीन–जायदाद नहीं रही। ❑

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा
7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका: पृष्ठ-28, फरवरी, 2024 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X
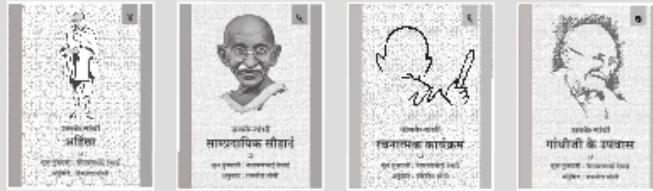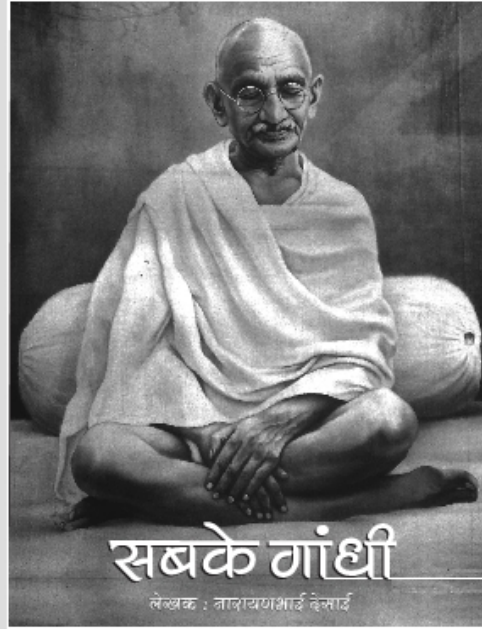
सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।